भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा
Ph.D., D.Lit. (Sub.)
निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2024

ISBN : 978 - 81 - 89435 - 66 - 0

मूल्य - 300/-

रचना - भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

मुद्रक - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

स्मृतियों में राजनीतिक प्रशासन

पिंकी सांखला
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय राजनीति की जड़ें धर्म, नीति और नैतिकता में निहित हैं। यहाँ राज्य की उत्पत्ति किसी भौतिक या आर्थिक कारण से नहीं मानी गई, बल्कि धर्म की रक्षा तथा लोककल्याण की सुनिश्चितता के लिए उसे आवश्यक माना गया है। भारतीय मनीषा के अनुसार — '**धर्मस्य मूलं राज्ञः**' अर्थात् राजा धर्म का आधार है। स्मृतियों में राजनैतिक प्रशासन का स्वरूप केवल सत्ता-संरचना का वर्णन नहीं करता, बल्कि एक नैतिक शासन-व्यवस्था की परिकल्पना प्रस्तुत करता है। स्मृतियों के अनुसार राजनीति का उद्देश्य प्रजापालन, न्याय, धर्मसंरक्षण और समाज में शान्ति-व्यवस्था की स्थापना है।

वेदों में जहाँ समाज के प्रारम्भिक प्रशासन का उल्लेख मिलता है, वहीं स्मृतियाँ उस व्यवस्था का व्यवस्थित स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। वेदकालीन समाज में जो संस्थाएँ बीज रूप में थीं, वही स्मृतियों में विकसित रूप धारण करती हैं। इसलिए स्मृतियाँ भारतीय राजनीतिक चिंतन का व्यवहारिक रूप हैं। ये केवल दार्शनिक न होकर प्रशासनिक, न्यायिक और आर्थिक पक्षों का भी विस्तृत विवेचन करती हैं।

'स्मृति' शब्द का अर्थ है — 'जो स्मरण रखा गया है'। श्रुति (वेद) के पश्चात धर्मशास्त्रों में स्मृतियों का स्थान आता है। स्मृतियाँ वैदिक ज्ञान की व्यवहारिक व्याख्या करती हैं। ये धमज़, नीति, आचार, समाज, शासन और न्याय के लिए मानक ग्रंथ मानी गई हैं। स्मृतियों का उद्देश्य मानव जीवन के सभी पक्षों को धमज़ के आलोक में व्यवस्थित करना है — व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में।

स्मृतियाँ मुख्यत: वेदों, उपनिषदों, और ब्राह्मणग्रंथों की शिक्षाओं को व्यवहारिक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इनमें यह माना गया कि जब समाज जटिल हुआ, तब केवल वैदिक सिद्धांत पर्याप्त नहीं रहे। अत: मनीषियों ने समय, परिस्थिति और लोकाचार के अनुसार शासन, कानून, और नीति से सम्बन्धित नियमों की रचना की। इस प्रकार स्मृतियाँ भारतीय विधि और प्रशासनिक परंपरा का मूल स्रोत बन गईं। स्मृतियों की रचना कालानुक्रम से लगभग ईसा पूर्व 600 से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक फैला हुआ माना जाता है। यह वह काल था जब समाज कृषि-प्रधान था, जाति-व्यवस्था

संगठित थी और राज्य व्यवस्था स्थिर रूप धारण कर चुकी थी। वेदों में जहाँ 'राजन्' का उल्लेख जन-समूह के प्रमुख के रूप में होता है, वहीं स्मृतियों में 'राजा' एक विधिसम्मत शासक बन जाता है।

मनुस्मृति को सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रभावशाली स्मृति माना गया है, जिसकी रचना लगभग ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में हुई। इसके बाद याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति और कात्यायन स्मृति क्रमशः रची गईं। इन सभी स्मृतियों में समाज के बदलते स्वरूप के अनुसार प्रशासनिक नियमों और दण्डनीति में भी परिवतज़्न दिखाई देता है।

राजनीति के क्षेत्र में स्मृतियाँ राजसत्ता की दिव्यता और प्रजासेवा की नीतियों को एक साथ स्थापित करती हैं। वे इस सिद्धांत को दृढ़ करती हैं कि —

'राजा प्रजासुखे सुखं, प्रजानां च हिते हितम्। नात्मप्रियं हितं राज्ञः, प्रजानां तु प्रियं हितम्॥' (मनुस्मृति, 7/35)

अर्थात् राजा का सुख प्रजा के सुख में और उसका हित प्रजा के हित में है। राजा का अपना कोई स्वार्थ नहीं, उसका सर्वस्व प्रजाहित के लिए समर्पित होना चाहिए।

(1) **मनुस्मृति :-** मनु को आदिमनुष्य, प्रथम विधाता और विधिवेत्ता माना गया है। उनकी स्मृति सबसे प्राचीन और सर्वाधिक प्रभावशाली है। इसमें राजधर्म, दण्डनीति, मंत्रिपरिषद्, न्याय, कर व्यवस्था तथा प्रजापालन से संबंधित अत्यंत व्यवस्थित सिद्धांत मिलते हैं। मनुस्मृति में राजनीति का लक्ष्य धर्म की स्थापना और प्रजा की रक्षा बताया गया है।

(2) याज्ञवल्क्य स्मृति :- यह स्मृति अपेक्षाकृत नवीन और अधिक व्यवस्थित मानी जाती है। इसमें विधि और प्रशासन को तीन खंडों में विभक्त किया गया है — आचार, व्यावहार, और प्रायश्चित्त। याज्ञवल्क्य स्मृति में मंत्रिपरिषद्, अमात्य, सेनापति, कोषाध्यक्ष, तथा नगरङ्क्व्यवस्था का अत्यंत व्यावहारिक विवरण मिलता है।

(3) नारद स्मृति :- नारद स्मृति विशेष रूप से न्याय और विधि व्यवस्था पर केंद्रित है। इसे प्राचीन भारत का विधि-संग्रह कहा जा सकता है। इसमें राज्य और प्रशासन के व्यवहारिक पक्ष जैसे अनुबंध, दायित्व, और दण्ड के प्रकारों का विस्तृत विवेचन है।

(4) बृहस्पति स्मृति :- बृहस्पति स्मृति का स्वरूप विधिशास्त्रीय और दण्डनीतिक है। इसमें राजा की न्यायाधीश के रूप में भूमिका, अपराध और दण्ड की श्रेणियाँ, और लोक प्रशासन का नैतिक आधार स्पष्ट किया गया है।

(5) कात्यायन स्मृति :- कात्यायन स्मृति में विशेषतः दण्ड और न्याय की प्रक्रिया, दस्तावेजी साक्ष्य, और प्रशासनिक कर्मचारियों की उत्तरदायित्व-व्यवस्था पर

जोर दिया गया है। यह स्मृति भारतीय न्यायशास्त्र के विकास का एक उन्नत चरण दर्शाती है।

स्मृतियों में राज्य की मूल अवधारणा

स्मृतियों में राज्य की उत्पत्ति 'राज्यसृष्टि' या 'राजसंस्थान' नाम से वर्णित है। मनु के अनुसार, प्रारम्भिक अवस्था में जब लोग स्वेच्छाचारी होकर धर्मभ्रष्ट हो गए, तब भगवान ने प्रजाओं की रक्षा के लिए राजा की स्थापना की। मनु कहते हैं —

'राजा धर्मेण पृथिवीं चिरं धारयति।' (मनुस्मृति 7/78)

राज्य का उद्देश्य धर्म की रक्षा और लोकमंगल है। स्मृतियाँ स्पष्ट करती हैं कि राजा केवल शासक नहीं, बल्कि धर्म का प्रतिपालक और लोकहित का अभिभावक है। शासन को धामिज़्क अनुशासन के भीतर रहकर चलाना उसका प्रमुख कर्तव्य है।

राजनैतिक प्रशासन के अध्ययन में स्मृतियों का योगदान

स्मृतियों ने भारत में राजनीतिक चिंतन को धर्मशास्त्र की परिधि से निकालकर एक संगठित प्रशासनिक स्वरूप दिया। इनमें न केवल शासन की सिद्धांतात्मक रूपरेखा है, बल्कि कार्यपालिका, न्यायपालिका, राजकोष, सेना, तथा स्थानीय निकायों की सटीक संरचना का वर्णन भी है। स्मृतियों के माध्यम से भारतीय प्रशासन का जो आदर्श विकसित हुआ, वह धर्म, नीति और लोकमंगल पर आधारित था।

मनुस्मृति से लेकर कात्यायन स्मृति तक का विकास यह दर्शाता है कि भारतीय समाज में प्रशासनिक संस्था धीरे-धीरे अधिक उत्तरदायी और व्यवस्थित होती गई। इन ग्रंथों ने यह सुनिश्चित किया कि शक्ति और अधिकार धर्म के अधीन रहें, जिससे शासन सवज़्सामान्य के क्ल्याण का साधन बने।

निष्कर्षतः स्मृतियों में राजनैतिक प्रशासन का दर्शन भारतीय चिंतन की विशिष्ट देन है। यहाँ राज्य को केवल सत्ता-संस्थान नहीं, बल्कि धर्मरक्षा और प्रजाहित का उपकरण माना गया है। इन ग्रंथों ने राजनीति को नैतिकता से जोड़कर उसे आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान की। इस दृष्टि से स्मृतियाँ भारतीय प्रशासन की जड़ में निहित धर्माधारित शासनव्यवस्था की आधारशिला हैं।

राजा का स्वरूप, गुण एवं कर्तव्य

भारतीय स्मृतियों में राजा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। वेदों में जहाँ 'राजन्' शब्द 'जनपद के रक्षक' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, वहीं स्मृतियों में राजा को धर्म, न्याय और लोकमंगल का प्रतीक माना गया है। स्मृतिकारों के अनुसार — 'राजा प्रजासुखे सुखं प्रजानां च हिते हितम्।' (मनुस्मृति 7/35) अर्थात् राजा का सुख प्रजा के सुख में और उसका हित प्रजा के हित में निहित है।

राजा केवल शासनकर्ता नहीं, बल्कि समाज के नैतिक अनुशासन और धर्मसंरक्षण

का साधन है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि, धर्म का पालक और प्रजा का पिता है। स्मृतियाँ स्पष्ट करती हैं कि राजसत्ता की वैधता धर्म पर आधारित है — यदि राजा धर्म से विचलित होता है तो उसका शासन अधर्म कहलाता है।

मनुस्मृति में राजा की उत्पत्ति को दैवी बताया गया है। मनु कहते हैं कि जब समाज में अराजकता फैल गई, तब प्रजाओं की रक्षा के लिए परमात्मा ने राजा की रचना की।

'सृष्टेऽस्मिन्नेव लोकेऽस्मिन् धर्मे नष्टे यदा नृणाम्।
रक्षार्थं सर्वभूतानां राजा सृष्टोऽभिरक्षितः॥' (मनुस्मृति 7/3)

अर्थात् जब लोक में धर्म नष्ट हो गया, तब सभी प्राणियों की रक्षा के लिए भगवान ने राजा की सृष्टि की। इस प्रकार स्मृतियों में राजा को ईश्वर के समान माना गया है। मनु ने कहा — 'राजा भवति देवत्वात् पृथिव्यां च यथा हरिः।' (मनुस्मृति 7/8) अर्थात् राजा देवताओं के समान पृथ्वी पर विष्णु के स्वरूप में स्थित होता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति (1/351) में भी कहा गया है — 'राजा हि लोकपालानां यथावत् पालयेत् प्रजाः।' अर्थात् राजा लोकपालों के समान अपनी प्रजा की रक्षा करे। इस प्रकार स्मृतियाँ राजा को न केवल सांसारिक शासक, बल्कि धमज़रूपी राज्य के रक्षक के रूप में देखती हैं।

राजा के गुण

स्मृतियों में आदर्श राजा के लिए अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। मनुस्मृति (7/43–45) के अनुसार — राजा में साहस, धैर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य, दानशीलता, विनय, शौर्य, शुद्ध आचरण, तथा बुद्धिमत्ता का होना आवश्यक है।

'धृतिः क्षमा च सत्यं च दानं चाप्यल्पलोभता।
यज्ञश्चाध्ययनं चैव सत्यं च ब्रह्मचर्यकम्॥' (मनुस्मृति 7/43)

याज्ञवल्क्य स्मृति (1/329) में राजा के लिए कहा गया है कि वह न्यायप्रिय, लोकहितैषी, विद्वान् और आत्मसंयमी होना चाहिए।

'न्यायार्थं धर्मकार्यार्थं प्रजानां परिपालनम्।
राजा यः कुरुते नित्यं स धर्मेण न जायते॥'

नारद स्मृति में राजा की नीतिपरायणता और दण्डशासन की दक्षता को अनिवार्य माना गया है। बृहस्पति और कात्यायन स्मृतियों में राजा को कर्मठ, परिश्रमी, सत्यनिष्ठ और अहंकाररहित बताया गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजा को अपने चरित्र और आचरण से जनता के लिए आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। स्मृतियाँ स्पष्ट कहती हैं कि 'यथा राजा तथा प्रजा' — राजा का आचरण ही प्रजा के आचरण का आदर्श बनता है।

राजा के कर्तव्य

राजा के प्रमुख कर्तव्यों का उल्लेख लगभग सभी स्मृतियों में मिलता है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं —

धर्मरक्षा और न्यायपालन :- राजा का प्रथम कर्तव्य धर्म की रक्षा करना है। मनु कहते हैं — 'धर्मेण पृथिवीं रक्षेत् प्रजाः चाभ्यनुशासयेत्।' (मनुस्मृति 7/35) अर्थात् राजा को धर्म द्वारा पृथ्वी और प्रजा की रक्षा करनी चाहिए।

राजा को यह देखना चाहिए कि राज्य में कोई अधर्म न फैले, और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मानुसार न्याय मिले। याज्ञवल्क्य स्मृति (1/324) में कहा गया है कि राजा को न्याय करते समय न तो क्रोध, न लोभ और न पक्षपात करना चाहिए।

प्रजापालन और लोकमंगल :- स्मृतियाँ राजा को 'प्रजानां पिता' कहती हैं। उसे अपनी प्रजा के सुख-दु:ख में समान रूप से सहभागी होना चाहिए।

'पितेव पुत्रान् रक्षेत् सर्वान् राजा सदा प्रजाः।' (याज्ञवल्क्य स्मृति 1/337)

राजा का धर्म है कि वह प्रजा के हितार्थ कार्य करे, उसके जीवन में स्थिरता और सुरक्षा स्थापित करे।

दण्डनीति का पालन :- राजा का तीसरा कर्तव्य दण्ड का न्यायपूर्ण प्रयोग है। स्मृतियाँ मानती हैं कि यदि राजा दण्ड का पालन न करे, तो समाज में अराजकता फैल जाती है। मनु कहते हैं — 'दण्ड एव हि सर्वेषां वारणं पापकर्मणाम्।' (मनुस्मृति 7/15) अर्थात् दण्ड ही पाप कर्मों को रोकने वाला सबसे बड़ा साधन है।

राजा को दण्ड का प्रयोग केवल भय या प्रतिशोध के लिए नहीं, बल्कि सुधार के लिए करना चाहिए। नारद स्मृति में दण्ड को 'शासन का प्राण' कहा गया है।

मंत्रिपरिषद् से परामर्श :- राजा को शासन के निर्णय अकेले नहीं लेने चाहिए। मनुस्मृति (7/54) में स्पष्ट कहा गया है कि वह ज्ञानी, धर्मनिष्ठ और अनुभवसंपन्न मंत्रियों से परामर्श करे। 'मंत्रिणो नीतिशास्त्रज्ञान् स्थिरबुद्धीन् कुलोद्भवान्।' राजा का कर्तव्य है कि वह प्रशासनिक कार्यों में सामूहिक बुद्धि का प्रयोग करे।

आर्थिक और कर व्यवस्था का नियंत्रण :- राजा को राज्य की आय-व्यय पर सावधानी रखनी चाहिए। याज्ञवल्क्य स्मृति (2/7) में कहा गया है — 'नात्यर्थं संग्रहं कुर्यात् प्रजानां च हितं स्मरेत्।' अर्थात् राजा को प्रजा से अत्यधिक कर नहीं लेना चाहिए, और राज्य की संपत्ति को प्रजाहित के लिए उपयोग में लाना चाहिए।

सेना और सुरक्षा व्यवस्था :- राजा को अपने राज्य की सीमाओं की रक्षा करनी चाहिए। मनु ने कहा है — 'सेनायुक्तः स्थिरो राजा प्रजानां चाभिरक्षिता।' राजा को अपनी सेना को सदैव सतर्क, अनुशासित और धर्मयुक्त रखना चाहिए।

राजा का आचरण और नैतिक अनुशासन

स्मृतियों ने राजा के लिए कठोर नैतिक अनुशासन निर्धारित किया है। उसे मद, लोभ, क्रोध और अहंकार से मुक्त रहना चाहिए। मनु कहते हैं — 'मदं क्रोधं च लोभं च त्यजेद् धर्मं च रक्षतु।' > राजा के आचरण में आत्मसंयम और विनम्रता होनी चाहिए।

याज्ञवल्क्य स्मृति में यह भी कहा गया है कि राजा को प्रतिदिन ब्राह्मणों से धर्म का उपदेश सुनना चाहिए और अपने कर्मों की समीक्षा करनी चाहिए। प्रात:काले ब्राह्मणानां धर्मोपदेशं नृपो श्रुणुयात्।' इस प्रकार राजा के व्यक्तिगत आचरण में भी धार्मिकता अनिवार्य है।

राजा और प्रजा का संबंध :- स्मृतियाँ राजा और प्रजा के संबंध को पारस्परिक कर्तव्यों पर आधारित मानती हैं। राजा प्रजा का रक्षक है और प्रजा उसका पालनकर्ता। मनु ने कहा — 'राजा धर्मेण प्रजा: पालयन् स्वं लोकं प्राप्नुयात्।' राजा यदि धर्मपूर्वक शासन करे तो स्वर्ग प्राप्त करता है, और अधर्म से प्रजा का शोषण करे तो नरक में जाता है।

इस संबंध में नारद स्मृति कहती है कि यदि राजा अधर्म करता है तो प्रजा को उसे त्याग देना चाहिए — यह सामाजिक उत्तरदायित्व का अत्यंत प्राचीन सिद्धांत है।

राजा का प्रशिक्षण और शिक्षा :- राजा को राज्य संचालन से पूर्व विधिवत् शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक था। स्मृतियों में कहा गया है कि राजकुमार को वेद, अर्थशास्त्र, धनुर्वेद, नीति और न्यायशास्त्र की शिक्षा दी जाए। याज्ञवल्क्य स्मृति में यह भी कहा गया है कि राजा को शास्त्रों के साथ-साथ लोकाचार का भी ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि शासन केवल सिद्धांत नहीं, व्यवहार का विषय भी है।

राजा के अनुचित आचरण पर नियंत्रण :- स्मृतियों में यह भी व्यवस्था थी कि यदि राजा अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाए, तो उसे पदच्युत किया जा सकता है। बृहस्पति स्मृति में उल्लेख है — 'यो राजा धर्मविहीन: स प्रजाभि: परित्यज्यते।' यह विचार भारतीय राजनीतिक चिन्तन की लोकतांत्रिक संवेदनशीलता को दशातज़ है कि राजा जनता के प्रति उत्तरदायी है।

स्मृतियों में राजा का स्वरूप दैवी, किन्तु कर्तव्यपरायण बताया गया है। वह न केवल शासनकर्ता, बल्कि धर्म का प्रतिनिधि है। उसके गुण, आचरण और नीति से ही राज्य की दिशा निधाज़रित होती है। स्मृतियाँ राजा को शक्ति का नहीं, बल्कि धर्म का प्रतीक बनाती हैं। राजा का सर्वोच्च कर्तव्य प्रजाहित, न्याय और धर्मपालन है। यदि वह इनसे विचलित होता है, तो उसका शासन अधर्म कहलाता है। इस दृष्टि से स्मृतियों का राजतंत्र 'धर्मराज्य' का आदर्श प्रस्तुत करता है — जहाँ राजा का शासन धर्माधारित, न्यायनिष्ठ और लोकमंगलोन्मुख होता है।

मंत्रिपरिषद् एवं प्रशासनिक तंत्र

स्मृतियों में शासन–व्यवस्था को केवल राजा–केन्द्रित संस्था नहीं माना गया, बल्कि उसे सामूहिक बुद्धि और संगठित सहयोग पर आधारित संस्था के रूप में देखा गया है। स्मृतिकारों ने यह स्वीकार किया कि राज्य संचालन में अकेले राजा की बुद्धि पर्याप्त नहीं हो सकती। इस कारण उन्होंने मंत्रिपरिषद्, अमात्य, पुरोहित, सेनापति, कोषाध्यक्ष, नगराध्यक्ष आदि अधिकारियों की संगठित व्यवस्था का उल्लेख किया है।

राजा के लिए मनु ने स्पष्ट कहा — 'एकेनैव न कर्तव्यो मन्त्रः कस्यापि कर्मणः। एकस्य च विपत्तिः स्याद् बहूनां नास्ति सन्देहः॥' (मनुस्मृति 7/54) अर्थात् किसी भी कार्य का निर्णय राजा को अकेले नहीं करना चाहिए, क्योंकि एक व्यक्ति भूल कर सकता है, परन्तु अनेक ज्ञानी व्यक्तियों के परामर्श से त्रुटि की संभावना नहीं रहती।

मंत्रिपरिषद् शासन की रीढ़ कही जा सकती है। यह न केवल राजा के कार्यों का निर्देशन करती है, बल्कि शासन के प्रत्येक क्षेत्र — प्रशासन, न्याय, वित्त, सुरक्षा, नीति, और प्रजा–कल्याण से जुड़ी हुई थी। स्मृतियों के अनुसार, राजा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके मंत्री कितने योग्य, धर्मनिष्ठ और कुशल हैं।

मनु के अनुसार — 'राजा हितं मन्त्रिणां बुद्ध्या कुर्वीत धर्मतस्तथा।' (मनुस्मृति 7/58) अर्थात् राजा को अपने मंत्रियों के साथ धर्मपूर्वक विचार करके राज्य के कार्य करने चाहिए।

स्मृतियों में मंत्रिपरिषद् के आकार के विषय में भिन्न मत मिलते हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा को सात या आठ मंत्रियों को रखना चाहिए, जबकि याज्ञवल्क्य स्मृति (1/331) में इसे बारह तक बताया गया है।

मनुस्मृति (7/54) कहती है — 'सप्त वा मन्त्रिणो राज्ञः समाहूया विचक्षणाः।' अर्थात् राजा को सात विद्वान् और विवेकी मंत्रियों को अपने साथ रखना चाहिए। इन मंत्रियों में प्रधान मंत्री (महामात्य), पुरोहित, सेनापति, कोषाध्यक्ष, सचिव, नगराध्यक्ष, और गुप्तचर प्रमुख प्रमुख माने गए हैं।

योग्यताएँ :– स्मृतियों में मंत्रियों के चयन हेतु कठोर नैतिक और बौद्धिक योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं। मनु कहते हैं कि राजा को मंत्रियों का चयन करते समय उनके कुल, विद्या, सत्य, शौयज़, और लोभ–मुक्त आचरण पर विचार करना चाहिए। 'कुलं शिक्षा च वृत्तं च शौर्यं चाप्यल्पलोभता। एतानि मन्त्रिणां मूलं परिक्ष्य विनियोजयेत्॥' (मनुस्मृति 7/62)

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि मंत्री विद्वान्, नीतिज्ञ, धर्मनिष्ठ, और अनुभवसंपन्न होना चाहिए।

'न्यायार्थं नीतिशास्त्रज्ञो यः स मंत्री भवेद् नृपः।' (याज्ञवल्क्य स्मृति 1/331)

नारद स्मृति मंत्रियों के लिए गुप्तता, सत्यनिष्ठा, और राज्य-भक्ति को अनिवार्य मानती है। यह कहा गया है कि जो व्यक्ति राजगोपन को प्रकट करता है, उसे कठोर दण्ड दिया जाए।

मंत्रिपरिषद् के प्रमुख सदस्य और उनके कार्य

पुरोहित :- पुरोहित राजा का धर्मोपदेशक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक होता था। वह राजधर्म, नीति और शास्त्र के अनुसार निर्णय देने में सहायता करता था। याज्ञवल्क्य स्मृति (1/313) में कहा गया है — 'पुरोहितो धर्मकुशलो नृपस्य मार्गदर्शकः।' राजा के सभी महत्वपूर्ण निर्णय पुरोहित की सम्मति से ही होते थे।

महामात्य (प्रधान मंत्री) :- महामात्य मंत्रिपरिषद् का प्रमुख अधिकारी था। वह राज्य की नीतियों का संचालन, प्रशासनिक विभागों की देखरेख और राजा की अनुपस्थिति में शासन की जिम्मेदारी निभाता था। बृहस्पति स्मृति में महामात्य को 'राज्य की आँख' कहा गया है।

सेनापति :- सेनापति राज्य की सुरक्षा और युद्ध संचालन का प्रमुख था। उसका कर्तव्य था कि वह सेना को अनुशासित रखे और राज्य की सीमाओं की रक्षा करे। याज्ञवल्क्य स्मृति (1/336) में कहा गया है — 'सेनापतिः सदा शूरो नीतिज्ञश्च परिक्षितः।'

कोषाध्यक्ष (सन्निधाता) :- कोषाध्यक्ष राज्य की धन-संपत्ति का संरक्षक था। वह कर-संग्रह, व्यय और लेखांकन का उत्तरदायी था। मनु ने कहा — 'कोषं च पालयेद् धृत्वा राजा धर्मेण पालयेत्।' कोष का अपव्यय या भ्रष्टाचार गंभीर अपराध माना जाता था।

नगराध्यक्ष :- नगराध्यक्ष नगर प्रशासन, व्यापार, यातायात, और नागरिक सुविधाओं की देखरेख करता था। वह बाजारों में न्याय देता और व्यवस्था बनाए रखता।

गुप्तचर विभाग प्रमुख :- राज्य की सुरक्षा के लिए गुप्तचर विभाग अत्यंत महत्वपूर्ण था। बृहस्पति स्मृति में कहा गया है कि राजा को गुप्तचरों के माध्यम से अपने राज्य के प्रत्येक भाग की जानकारी रखनी चाहिए।

'सवेर्षां व्यवहाराणां ज्ञात्वा राजा नियोजयेत्।'

प्रशासनिक तंत्र का स्वरूप

स्मृतियों में प्रशासनिक तंत्र को तीन स्तरों में विभाजित किया गया है —

(1) केन्द्रीय प्रशासन :- जिसमें राजा और उसकी मंत्रिपरिषद् सम्मिलित थी।

(2) प्रांतीय प्रशासन :- जिसे 'जनपदाधिप' या 'राजकुमार' के अधीन रखा जाता था।

(3) स्थानीय प्रशासन :- ग्राम, नगर और व्यापारिक केंद्रों के प्रमुख 'ग्रामिण', 'नागरिक' या 'श्रेणिपति' कहलाते थे।

मनुस्मृति में कहा गया है — 'ग्रामं ग्रामं च संचार्य ज्ञात्वा तेषां स्थितिं नृपः।' राजा को समय-समय पर अपने अधिकारियों से ग्रामों और नगरों की स्थिति की जानकारी लेनी चाहिए।

अमात्य प्रणाली :- अमात्य शब्द का अर्थ है 'राजा का सहायक'। ये विभिन्न विभागों के प्रमुख अधिकारी थे — जैसे कृषि, व्यापार, न्याय, कोष, वन, खनिज, परिवहन आदि। याज्ञवल्क्य स्मृति (1/335) में कहा गया है — 'अमात्याः सर्वकार्येषु नृपस्य सहायाः सदा।' राजा के सभी कार्यों में अमात्य ही उसके दाहिने हाथ की तरह कार्य करते थे।

अमात्य की नियुक्ति परीक्षण के बाद होती थी। मनु ने कहा कि नियुक्ति से पहले मंत्री या अमात्य की परीक्षा चार प्रकार से की जाए — धर्म, अर्थ, काम और भय — इन चारों परिस्थितियों में उसकी सत्यनिष्ठा और चरित्र की जांच की जानी चाहिए।

प्रशासनिक नियंत्रण और उत्तरदायित्व

स्मृतियों में प्रशासनिक अधिकारियों पर कठोर उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया है। जो अधिकारी अपने कार्य में लापरवाही या भ्रष्टाचार करता, उसे तत्काल पदच्युत या दण्डित किया जाता। याज्ञवल्क्य स्मृति (2/188) कहती है — 'अमात्यैः स्वकर्म त्यक्तं राजा दण्डयेत् स्वयम्।' राजा को प्रत्येक अधिकारी के कार्य का निरीक्षण स्वयं करना चाहिए।

राजा को यह भी सलाह दी गई है कि वह समय-समय पर गुप्त रूप से अपने अधिकारियों के कार्यों की जांच करे।

मंत्रिपरिषद् की नीति-निर्माण भूमिका :- मंत्रिपरिषद् केवल सलाहकार संस्था नहीं थी, बल्कि नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन की उत्तरदायी भी थी। राज्य की योजनाएँ, युद्ध या संधि, कर निर्धारण, भूमि वितरण, और दण्डनीति — इन सभी विषयों पर मंत्रिपरिषद् की राय ली जाती थी।

मनुस्मृति में कहा गया है — 'मन्त्रिणां बुद्धिमाश्रित्य कुर्यात् कर्माणि भूपतिः।' राजा को अपने निर्णय मंत्रिपरिषद् की सम्मति से करने चाहिए।

मंत्रिपरिषद् और न्यायपालिका का संबंध :- न्याय व्यवस्था में भी मंत्रिपरिषद् की भूमिका थी। राजा के साथ मंत्रिगण न्याय-निर्णय में सहयोग करते थे। याज्ञवल्क्य स्मृति (2/1) में कहा गया है — 'राजा न्यायं सदा कुर्यात् सहामात्यैः विचक्षणैः।' राजा को न्याय करते समय बुद्धिमान् अमात्यों के साथ परामर्श करना चाहिए।

इस प्रकार मंत्रिपरिषद् शासन के सभी अंगों — कार्यपालिका, न्यायपालिका

और वित्तीय तंत्र से अभिन्न रूप से जुड़ी थी।

दण्डनीति एवं न्याय व्यवस्था

भारतीय स्मृतियों में राज्य और शासन का उद्देश्य केवल शक्ति और संपत्ति का संरक्षण नहीं है, बल्कि धर्म, न्याय और प्रजापालन सुनिश्चित करना भी है। इस दृष्टि से दण्ड और न्याय व्यवस्था राज्य का मूलाधार मानी गई है। स्मृतियाँ स्पष्ट करती हैं कि यदि राज्य में न्याय और दण्ड का पालन नहीं होगा, तो समाज में अराजकता और अधर्म फैल जाएगा।

मनुस्मृति में कहा गया है — 'दण्ड एव हि राज्यस्य प्राणः, तेनैव लोकः स्थिरः भवेत्।' (मनुस्मृति 7/15) अर्थात् दण्ड ही राज्य की आत्मा है, जिसके बिना राज्य का अस्तित्व नहीं टिक सकता। स्मृतियाँ दण्ड और न्याय को केवल शासन का उपकरण नहीं, बल्कि धर्म और नैतिकता के संरक्षण का माध्यम मानती हैं। यही कारण है कि राजा, मंत्रिपरिषद् और न्यायाधीश सभी दण्ड और न्याय के पालन के लिए उत्तरदायी थे।

स्मृतियों में दण्ड का उद्देश्य स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है — अपराधियों का सुधार करना, समाज में अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखना, अन्याय और अधमज़ को रोकना, प्रजा के हित और सुरक्षा सुनिश्चित करना।

मनुस्मृति (8/17) कहती है — 'निष्पापस्य जीवनं स्थिरं प्रजासुखार्थम्, अपराधिनां दण्डः अनिवार्यः।'

याज्ञवल्क्य स्मृति (2/92) में भी यह विचार मिलता है कि दण्ड का प्रयोग केवल हिंसा और प्रतिशोध के लिए नहीं, बल्कि समाज में न्याय और नीति बनाए रखने के लिए किया जाना चाहिए।

स्मृतियों में अपराध और दण्ड के प्रकार का विस्तृत विवेचन है। प्रमुख प्रकार हैं —

शारीरिक दण्ड :- शारीरिक दण्ड का प्रयोग गंभीर अपराधों, जैसे हत्या, चोरी, और हिंसा में किया जाता था। मनुस्मृति (8/180) में कहा गया है कि अपराधी को अपराध के अनुसार कठोर दण्ड देना चाहिए।

आर्थिक दण्ड :- कर या संपत्ति के माध्यम से दण्ड देना। यह चोरी, अनुचित व्यापार, या करों का विलंब करने वाले व्यक्तियों पर लगाया जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृति (2/110) में कहा गया है — 'अपराधिनः संपत्ति-विनियोगेन दण्डनीयाः।'

सामाजिक दण्ड :- समाज से बहिष्कार, अपमान या सामाजिक प्रतिबंध के माध्यम से अपराधियों को दण्डित किया जाता था। यह विशेष रूप से धार्मिक और सामाजिक अपराधों में लागू होता था।

सुधारात्मक दण्ड :- स्मृतियों में यह भी कहा गया है कि दण्ड का मुख्य

उद्देश्य अपराधी का सुधार और समाज में पुनः सम्मिलन है। नारद स्मृति में लिखा है — 'दण्डस्य मूलं पापकृत्ये सुधारः।'

न्याय व्यवस्था और न्यायाधीश का कर्तव्य

स्मृतियों के अनुसार, न्याय व्यवस्था राज्य की रीढ़ है। राजा स्वयं न्याय करता या न्यायाधीश नियुक्त करता। याज्ञवल्क्य स्मृति (2/1) कहती है — 'राजा न्यायं सदा कुर्यात् सहामात्यैः विवेक्षिणः।' न्यायाधीश का कर्तव्य था कि वह निष्पक्ष, धर्मनिष्ठ और अनुभवी हो। उसके निर्णय में न तो लोभ, न क्रोध और न पक्षपात होना चाहिए।

मनुस्मृति (8/26) में कहा गया है — 'न्यायाधीशः सदा सत्यनिष्ठः भवेत्, प्रजा को भय और आशा के संतुलन से न्याय दे।' न्याय का उद्देश्य केवल अपराधी को दण्ड देना नहीं, बल्कि समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखना है।

न्याय प्रक्रिया :- स्मृतियों में न्याय प्रक्रिया व्यवस्थित और सुसंगठित है। इसमें निम्नलिखित तत्व शामिल हैं —

(1) साक्ष्य-संग्रह :— दस्तावेज, गवाह और अन्य प्रमाण

(2) साक्ष्य-परीक्षण :— आरोप और बचाव की सुनवाई

(3) अभियुक्ति और बचाव :— न्यायाधीश दोनों पक्षों की बात सुनता

(4) निर्णय और दण्ड :— अपराध के अनुसार निष्पक्ष दण्ड

नारद स्मृति में यह कहा गया है कि न्यायाधीश को निर्णय करते समय साक्ष्य की पुष्टि अवश्य करनी चाहिए।

न्याय में राजा की भूमिका

राजा न्याय का अंतिम अधिकारी था। यदि न्यायाधीश द्वारा निर्णय असंतोषजनक माना जाता, तो राजा स्वयं पुनः विचार करता। मनु कहते हैं — 'यदि न्यायालय त्रुटिपूर्ण निणज़्य दे, तो राजा को अपने विवेक से सुधार करना चाहिए।' राजा के न्याय और दण्ड प्रणाली में संतुलन बनाना आवश्यक था — कठोरता और करुणा के बीच सामंजस्य।

संपत्ति और कर के संबंध में न्याय :- याज्ञवल्क्य स्मृति (2/110) कहती है कि राजा को करों में न्याय करना चाहिए। अत्यधिक कर प्रजा के हित में नहीं, और कम कर से राज्य की स्थिरता नहीं हो सकती। राज्य की संपत्ति और प्रजा का हित दोनों संतुलित रहे। इस प्रकार वित्तीय नीति भी न्याय व्यवस्था का अंग मानी गई।

स्मृतियों में स्पष्ट किया गया कि दण्ड और न्याय केवल बाहरी नियंत्रण नहीं, बल्कि नैतिकता और धर्म के आधार पर होने चाहिए। मनु कहते हैं — 'यदि दण्ड धर्म और न्याय के अनुरूप न हो, तो वह अधर्म कहलाता है।'

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी कहा गया है कि न्याय का उद्देश्य केवल दण्ड देना नहीं, बल्कि समाज में धर्म और नीति की स्थापना करना है।

कर, अर्थ और वित्तीय प्रशासन

स्मृतियों में प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष राज्य की आर्थिक व्यवस्था है। आर्थिक प्रशासन के बिना राज्य की सुरक्षा, सेना, न्याय और सामाजिक कल्याण की योजनाएँ असंभव थीं।

मनुस्मृति (7/99) कहती है — 'धनं रक्षेत् राजा धर्मेण, प्रजा च सुखं प्राप्नुयात्।'

अर्थात् राजा को धर्मपूर्वक राज्य की संपत्ति का संरक्षण करना चाहिए और इसी के माध्यम से प्रजा का कल्याण सुनिश्चित होता है।

स्मृतियाँ स्पष्ट करती हैं कि कर और वित्तीय नीतियाँ प्रजा के हित और राज्य की स्थिरता के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं।

स्मृतियों में कर (राजस्व) का उद्देश्य केवल राज्य की आय जुटाना नहीं, बल्कि — राज्य और सेना के संचालन हेतु धन जुटाना, सामाजिक कल्याण और सार्वजनिक कार्यों का प्रबंधन, धर्म और न्याय की स्थापना के लिए संसाधन सुनिश्चित करना, प्रजा के लिए सुरक्षा और शिक्षा का प्रबंध करना इत्यादि था।

याज्ञवल्क्य स्मृति (2/7) में कहा गया है — राजा कर न हीं अत्यधिक, न ही अल्प, संतुलन से ले। इस प्रकार कर संग्रह में मितव्ययिता और न्याय का पालन अनिवार्य था।

स्मृतियों में विभिन्न प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है। प्रमुख प्रकार हैं —

(1) भूमि कर (भूकर) :- भूमि पर उत्पादित अन्न और संपत्ति पर कर। यह प्राय: स्थानीय अधिकारियों द्वारा संग्रहित किया जाता।

(2) व्यापार कर :- बाजार और व्यापारिक लेन-देन पर कर लगाया जाता था। नारद स्मृति में स्पष्ट है कि व्यापारी को उचित कर देना अनिवार्य था।

(3) आयकर और पेशागत कर :- राज्य में निवास करने वाले पेशेवरों, कारीगरों, चिकित्सकों और अन्य पेशेवरों से कर लिया जाता।

(4) अनुशासनात्मक और दण्ड संबंधी कर :- कुछ कर ऐसे भी थे, जो कानून-उल्लंघन या अनुचित व्यवहार पर दण्डस्वरूप लिए जाते थे।

स्मृतियों में राज्य की वित्तीय संरचना को व्यवस्थित रूप से वर्णित किया गया है।

(1) केन्द्रीय खजाना (राजकोष) :- राजा और कोषाध्यक्ष द्वारा नियंत्रित।

(2) प्रांतीय खजाने :- जनपदों के प्रशासनिक प्रमुखों द्वारा संचालित।

(3) स्थानीय निधि :- ग्राम और नगर के स्थानीय प्रमुखों द्वारा प्रबंधित।

कोषाध्यक्ष और वित्तीय प्रशासन

कोषाध्यक्ष (सन्निधाता) का कार्य केवल धन संग्रह करना नहीं था, बल्कि यह

सुनिश्चित करना भी था कि धन का उपयोग राज्य और प्रजा के हित में हो। कोषाध्यक्ष को भ्रष्टाचार और लापरवाही से बचने हेतु राजा द्वारा निगरानी में रखा जाता था।

राज्य की आय का मुख्य उपयोग निम्नलिखित कार्यों में होता था — सेना और सुरक्षा का रखरखाव, पुस्तकालय, शिक्षा और वेदशाला का संचालन, सड़कों, पुलों और सार्वजनिक निर्माण कार्यों का निर्माण, अतिथि और ब्राह्मणों के भोजन व धर्मशालाओं का संचालन, यज्ञ, उत्सव और धार्मिक अनुष्ठान के लिए वित्तीय सहयोग।

स्मृतियों में उल्लेख है कि कर संग्रह और वित्तीय निर्णय में स्थानीय अधिकारियों और ग्रामप्रधानों की भागीदारी आवश्यक थी। ग्राम में प्रत्येक व्यक्ति के योगदान की जानकारी रखने के लिए स्थानीय रिकार्ड बनाए जाते थे। यह प्रणाली प्राचीन भारत की लोकतांत्रिक संवेदनशीलता का संकेत देती है।

प्रजापालन और सामाजिक अनुशासन

प्रजा और राजा का परस्पर कर्तव्य :- स्मृतियों में राज्य का अंतिम उद्देश्य प्रजा का संरक्षण, कल्याण और सामाजिक अनुशासन स्थापित करना बताया गया है। राजा केवल सत्ता का प्रतीक नहीं था, बल्कि प्रजा के जीवन में व्यवस्था, न्याय और धर्म सुनिश्चित करने वाला केंद्र था। इसी दृष्टि से प्रजापालन और सामाजिक अनुशासन को राज्य की नींव माना गया।

मनुस्मृति (7/35) में स्पष्ट कहा गया है — 'राजा प्रजासुखे सुखं प्रजानां च हिते हितम्।' अर्थात् राजा का सुख प्रजा के सुख में और उसका हित प्रजा के हित में निहित है। स्मृतियों में यह भी वर्णित है कि प्रजा का पालन केवल राजा के आदेश से नहीं, बल्कि सामाजिक नियमों, धर्म और नैतिक मूल्यों से होना चाहिए।

स्मृतियों के अनुसार प्रजापालन का अर्थ है — प्रजा के अधिकारों और कर्तव्यों की रक्षा, धर्म और नीति के अनुरूप जीवन यापन सुनिश्चित करना, सामाजिक संघर्ष और अपराध को रोकना, *सामूहिक कल्याण और शिक्षा का प्रसार करना।

सामाजिक अनुशासन :- स्मृतियों में सामाजिक अनुशासन का अर्थ है — समाज में व्यवस्था बनाए रखना और धर्म का पालन सुनिश्चित करना। नारद स्मृति में कहा गया है — 'प्रजा धर्म का पालन करे, और यदि अपराध करे तो दण्ड और सुधार की व्यवस्था हो।'

सामाजिक अनुशासन के प्रमुख तत्व थे — नैतिक शिक्षा, धार्मिक नियमों का पालन, सामाजिक कर्तव्य पालन, कानून का पालन।

प्रजा के कर्तव्य और उत्तरदायित्व :- स्मृतियों में प्रजा के कर्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। इनमें राजा का पालन और सहायता, नैतिक और धार्मिक जीवन, कानून और दण्ड का सम्मान, सामाजिक सहयोग और सामूहिक कार्यों

में भागीदारी। मनुस्मृति (8/2) में कहा गया है — 'प्रजा राजा के आदेशों और धर्म के अनुसार चले, तभी राज्य में स्थिरता होगी।' स्मृतियाँ प्रजा को शिक्षा और धार्मिक ज्ञान के माध्यम से समाज में अनुशासन स्थापित करने की शिक्षा देती हैं।

सामाजिक अनुशासन :- सामाजिक अनुशासन के उल्लंघन पर दण्ड आवश्यक था। स्मृतियों में यह दण्ड केवल कठोरता के लिए नहीं, बल्कि सुधार और पुनः सामाजिक समेकन के लिए था। इसके अन्तर्गत धार्मिक अपराध, सामाजिक अपराध, आर्थिक अपराध आते थे।

राज्य और समाज का सहयोग :- स्मृतियों में बताया गया है कि राज्य और प्रजा के बीच सहयोगात्मक सम्बन्ध होना चाहिए। राजा प्रजा की सुरक्षा, शिक्षा और कल्याण सुनिश्चित करे और प्रजा राजा के आदेशों और न्याय का पालन करे। मनु कहते हैं — 'यदि राजा धर्मपूर्वक शासन करे और प्रजा अनुशासित हो, तो राज्य स्थिर और समृद्ध होगा।'

स्थानीय प्रशासन और अनुशासन :- ग्राम, नगर और प्रांत स्तर पर स्थानीय प्रमुखों का कर्तव्य था — स्थानीय नियमों का पालन कराना, सामाजिक विवादों का समाधान, प्रजा की सुरक्षा और कल्याण सुनिश्चित करना, राज्य और राजा के आदेशों का क्रियान्वयन इत्यादि।

राज्य की सुरक्षा और सैन्य प्रशासन

स्मृतियों में राज्य की स्थिरता और प्रजा की सुरक्षा को सर्वोपरि माना गया है। राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा की रक्षा और राज्य की अखंडता बनाए रखना था। इसके लिए सैन्य और सुरक्षा प्रशासन का सुव्यवस्थित तंत्र आवश्यक था। मनुस्मृति (7/92) में कहा गया है — ''सुरक्षा की रक्षा राजा का प्रथम धर्म है; जो राज्य को सुरक्षित रखेगा, वही प्रजा का हित साधेगा।'' स्मृतियों में कहा गया है कि शक्ति, नीति और सैन्य तंत्र के बिना राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता। सेना का उद्देश्य केवल युद्ध करना नहीं, बल्कि **अधर्म और अनाचार रोकना, और सीमा की रक्षा** करना था।

सेनापति और सैन्य संगठन :- स्मृतियों में सेनापति राज्य का उच्चतम सैन्य अधिकारी होता था। उसकी जिम्मेदारियाँ थीं — सेना का अनुशासन बनाए रखना, सैनिकों का प्रशिक्षण और युद्ध कौशल सुनिश्चित करना, राज्य की सीमाओं और नगरों की सुरक्षा, रणनीति, युद्ध योजना और सैनिकों का संचालन।

याज्ञवल्क्य स्मृति (2/352) में कहा गया — 'सुरक्षा और सैन्य प्रशासन गुप्तचर और सेना के सहयोग से ही प्रभावी होता है।' इस प्रकार प्राचीन भारत में सुरक्षा प्रशासन और सैन्य संगठन आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े थे।

राज्य की स्थिरता और विदेश नीति :- स्मृतियों में स्पष्ट किया गया है कि

एक राज्य का अस्तित्व केवल आंतरिक प्रशासन और सैन्य शक्ति पर निर्भर नहीं करता, बल्कि विदेशी संबंध और सामरिक नीति भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राजा का कर्तव्य था कि वह अपने पड़ोसी राज्यों और विदेशी शक्तियों के साथ सामरिक संतुलन बनाए रखे, ताकि राज्य की अखंडता और प्रजा का कल्याण सुनिश्चित हो।

मनुस्मृति (7/100) में कहा गया है — 'राज्य की स्थिरता केवल आंतरिक शक्ति से नहीं, बल्कि सामरिक बुद्धि और विदेश नीति से भी सुनिश्चित होती है।' स्मृतियाँ यह भी मानती हैं कि सैन्य शक्ति और कूटनीति एक साथ चलें तो राज्य अधिक सुरक्षित और समृद्ध रहता है।

निष्कषर्तः स्मृतियों में राजनैतिक प्रशासन केवल सत्ता का साधन नहीं था, बल्कि यह धर्म, न्याय, आर्थिक स्थिरता और प्रजा के कल्याण का समग्र तंत्र था। राज्य की संरचना में राजा, मंत्री, न्यायपालिका, कोषाध्यक्ष, सेनापति और प्रजा—सभी की भूमिका महत्वपूर्ण थी। राजा नीति निर्धारण, धर्म की रक्षा और प्रजा की सुरक्षा में उत्तरदायी था। मंत्री प्रशासन में सहयोग करते और नीति बनाते थे। न्यायपालिका कानून और सामाजिक अनुशासन बनाए रखती थी। कोषाध्यक्ष राज्य की आर्थिक शक्ति सुनिश्चित करते और सैन्य प्रशासन राज्य की रक्षा और सामरिक नीति में योगदान करता था। स्मृतियों में युद्ध केवल अंतिम उपाय था। राज्य की सामरिक नीति, कूटनीति और संधि-गठबंधन प्रजा की सुरक्षा और राज्य की स्थिरता सुनिश्चित करते थे। न्याय, वित्त और सैन्य प्रशासन का समन्वय राज्य की स्थिरता और प्रजा के कल्याण का आधार था। प्रजा का सहयोग प्रशासन की सफलता के लिए अनिवार्य था। यह प्रणाली अत्यंत नैतिक, न्यायसंगत और संगठित थी, जिसमें शक्ति का प्रयोग केवल रक्षा, न्याय और प्रजा के हित के लिए किया जाता था।

❑❑❑